'यो वाप्येतामित्यादि' जो उपासक इस पूर्वोक्त चिति चयन को नाचिकेत अग्नि का अनुष्ठान संपादन करता है। जो चिति ब्रह्मजज्ञात्मभूत ब्रह्मजज्ञ जीव तदात्मभूत अर्थात् तत्स्वरूप चिति का अनुसन्धान करता है वह नाचिकेत नामक अग्नि का चयन अनुष्ठान करता है। वह उपासक इस तरह ब्रह्मजज्ञात्मभूत हो करके। अग्नि चयन में ब्रह्मजज्ञत्व स्वरूप भावना से युक्त हो करके सर्वेश्वर श्रीरामजी की उपासना का संपादन करता है। जिस उपासना का संपादन करने से पुनः उत्पन्न नहीं होता है अर्थात् जन्म मरण चक्र लक्षण संसार में पुनः नहीं आता है। इसका अभिप्राय यह है कि ब्रह्मात्मक स्वस्वरूपत्व भावनापूर्वक क्रियमाण नाचिकेत अग्नि का अनुष्ठान ही ब्रह्मोपासना द्वारा नित्य निरतिशय सुखात्मक मोक्ष का साधन होता है किन्तु एतादृश भावना रहित अग्न्युपासन मोक्ष का साधन नहीं है। यद्यपि इस मन्त्र का व्याख्यान क्लिष्टप्राय तथा पुनरुक्ति दोष ग्रस्तसा है। अतः इस मन्त्र को किसी ने प्रक्षिप्त है ऐसा कहा है इसलिये इसका व्याख्यान नहीं किया है और किसी आचार्य ने व्याख्यान किया है तथापि पूर्वोक्त दोषद्वय से तो अनेक मन्त्र दूषित हैं ऐसा सम्भव होने से पूर्वोक्त दोष द्वय के भय से उन सब मन्त्रों का भी

परित्याग हो जायगा । इसलिये मैंने तो इस मन्त्र का ग्रहण कर यथारूप व्याख्यान किया है ॥१९॥

एष तेऽग्निर्नचिकेतः स्वर्ग्यो यमवृणीथा द्वितीयेन वरेण । एतमग्निं तवैव प्रवक्ष्यन्ति जनासः तृतीयं वरं नचिकेतो वृणीष्व ॥२०॥

हे नचिकेता ? यह तुम्हारे हेतु उपदिष्ट मोक्ष का साधन अग्निविद्या है । तुमने जिसे द्वितीय वरदान से मांगा था सभी जन अव से इस अग्निविद्या को तुम्हारे ही नाम से कहा करेंगे हे नचिकेता अव तुम तृतीय वरदान को मांगो ॥२०॥

हे नचिकेतः स्वर्ग्यः मोक्षस्थानभूतदेशविशेषप्रयोजनकः अग्निः अग्निविद्याः ते तुभ्यम् उपदिष्टो मयेति शेषः । यमग्निम् द्वितीयेन वरेण अवृणीथाः वृतवान् त्वमितिशेषः । जनासः जनाः 'आज्जसेरसुग्' इति असुगागमः छान्दसो बोध्यः । एतम् मदुपदिष्टम् । अग्निम् तवैव त्वत्सम्बन्धिनमेव प्रवक्ष्यन्ति वदिष्यन्ति अर्थात् तवैव नाम्ना सम्बद्धमिमं नाचिकेतोऽग्निरित्येवं रूपेण व्यवहरिष्यन्ति लोकाः हे नचिकेतः अतः परं तृतीयं परं स्वाभीप्सितं वृणीष्व प्रार्थयस्व, यावत्तृतीयं वरं न ददामि तुभ्यं तावत् अपूर्णप्रतिज्ञ एवाहं स्यामितिभावः ॥२०॥

'एषतेऽग्निरित्यादि' हे नचिकेता ? यह स्वर्ग्य मोक्षस्थान लक्षण जो देश विशेष उसका प्रयोजक जो अग्नि अर्थात् अग्निविद्या जिसका मैंने तुमको उपदेश दिया है। जिस अग्नि को तुमने द्वितीय वर से मुझसे मांगा है। इसको जनास-अर्थात् जनसमुदाय। यहां जन शब्द के प्रथमा बहुवचन जस विभक्ति में **'आज्जसेर सुक्'** इससूत्र से जस परे असुक् का आगम करके जनास: यह प्रयोग छान्दस बना है। ये लोग मुझसे उपदिष्ट इस अग्नि को तुम्हारे नामसे संबद्ध अर्थात् नाचिकेत अग्नि इस रूपसे ही व्यवहार करेंगे। हे नचिकेता ? इसके वाद स्वाभिलषित तृतीय वर की प्रार्थना करो। जबतक तृतीय वर मैं तुमको नहीं दूँगा तबतक मैं अपने को अपूर्ण प्रतिज्ञ ही मानूंगा। अब तुम मुझसे तृतीय वर मांगो ॥२०॥

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके। एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाऽहं वराणामेष वरस्तृतीयः ॥२१॥

जो यह मनुष्य में प्रेते-प्रेतावस्था यानी मनुष्य के मर जाने पर जीव रहता है या नहीं या परलोक है या नहीं इसप्रकार का सन्देह होता है कोई जीव रहता है या परलोक है ऐसा कहते हैं तो कोई मृत्यु के वाद जीव नहीं रहता है या परलोक नहीं है यों कहते हैं अतः

आपसे निश्चित शिक्षा प्राप्त मैं इस विषय को यथार्थ समझ सकूं यही वरों में से तृतीय वर है ॥२१॥

मुमुक्षुर्नचिकेताः द्वितीयेन वरेण मोक्षसाधनभूतामग्निविद्यां पप्रञ्छ । अधुना मोक्षस्वरूपविषये पृच्छति, स हि वादिविप्रतिपत्त्या मोक्षस्वरूपे संदिहान आस्ते, तथा हि केचित् क्षणिकविज्ञानरूपस्यात्मनः स्वरूपसमुच्छेदमेव मुक्तिं वदन्ति । अपरे तु नित्यविज्ञानरूपमात्मनं मन्यमानाः तद्गता-विद्याऽस्तमयं मोक्षमामनन्ति । तार्किकास्तु अशेषविशेषगुणोच्छेदमात्मनो मुक्तिं वर्णयन्ति । अन्येतु अपहतपाप्मत्वादिगुणविशिष्टः नित्यशुद्धः परमात्मैव उपाधिसंसर्गाद् जीवभावमुपैति, उपाध्यपगमाच्च यः तस्य परमात्मभावस्तमेव मोक्षस्वरूपतया निरूपयन्ति । सवासनाऽनादिकर्मरूपाविद्याविच्छेदपूर्वकाविर्भूतापहतपाप्मत्वादिगुणाष्टकविशिष्टस्य जीवस्य अप्राकृतदेशविशेषविशिष्टपरमात्मानुभव एव मोक्ष इति परे वैदिकाः वदन्ति । पुष्करपलाशकल्पस्य आत्मनः प्रकृतिपुरुषाऽविवेसजन्यभोक्तृत्वावभावविच्छेद एव मुक्तिरिति तु कापिलाः कल्पयन्ति । तदेवमादिभिः विप्रतिपत्तिभिः संशयाकुलितः नचिकेताः अस्ति । नास्त्यात्मकविप्रतिद्वयेन सर्वाः विप्रतिपत्तीं संगृह्य संशयं प्रदर्श्य मोक्षदशायां

मुक्तस्य किंस्वरूपमिति पृच्छति-येयम् प्रेते इति प्रेते प्रकर्षेण इते तत्तद्वादिस्वीकृतसकलबंधनमुक्ते मनुष्ये मोक्षाधिकारिजीवे या इयमनुभूयमाना स्वबुद्ध्या विषयीक्रिप्रमाणेति यावत् विचिकित्सा संशयः जायते इति शेषः। विचिकित्साहेतुभूते विप्रतिप्रत्तीर्दर्शयति अस्तीत्येके, सर्वबन्धविनिर्मुक्तौ सत्याम् अयमात्माऽस्तीत्येके वदन्तीतिशेषः, अयमात्मा बन्धमार्गमानन्तरं नास्तीत्येके स्वरूपोच्छितिमोक्षमाचक्षाणाः वदन्ति, अतः एतद् आत्मस्वरूपं मोक्षदशायां कीदृशमिति त्वया विदितात्मयाथात्म्येन सर्वज्ञेन गुरुणा मृत्युना अनुशिष्टः उपदिष्टः अहं नचिकेता विद्याम् जानीयाम् यथा तथा मामुपदिशेतिभावः। त्वया दातुं प्रतिज्ञातानां त्रयाण्ां वराणां मध्ये एष मोक्षस्वरूप विषयकः मया प्रार्थ्यमानः तृतीयो वरोऽस्ति ॥२१॥

मोक्षप्राप्ति के अभिलाषावान् नचिकेता द्वितीय वर से मोक्ष कारणीभूत अग्निविद्या को पूछा। इसके वाद मोक्ष का जो स्वरूप तद्विषयक प्रश्न करते हैं। वह नचिकेता अनेक प्रकारक वादियों के विप्रतिपत्ति (संशयात्मक ज्ञान के जनक कोटि द्वयोपस्थापक शब्द विशेषरूप विप्रतिपत्ति) से मोक्ष के स्वरूप के स्वरूप में संदेहशील है। तथा हि कोई क्षणिक विज्ञानवादी योगाचारमतानुयायी

क्षणिक विज्ञानस्वरूप आत्मा का दीप कलिका निर्वाण की तरह आत्मस्वरूप का जो आत्यन्तिक समुच्छेद उसी को मोक्ष कहते हैं। और नित्यविज्ञान को आत्मा मानने वाले आत्मविषयक आत्मनिष्ठ अनिर्वचनीय ज्ञाननिरस्य अनादिभावरूप अविद्या का जो अस्तमय अभाव है उस को मोक्ष कहते हैं।

'अविद्यास्तमयोमोक्षः सा च बन्ध उदाहृतः।

निवृत्तिरात्मामोहस्य ज्ञातत्वेनोपलक्षितः' स्वसम्प्रदाय सिद्ध अविद्या का जो अस्तमय उसका नाम है मोक्ष, वह अविद्या दो प्रकार की है स्थूलरूपासंस्काररूपा च, तथा ज्ञातत्वोपलक्षित मोह निवृत्तिरूप ही मोक्ष है। और नैयायिक तार्किक लोग तो ज्ञान इच्छा प्रयत्न सुख दुःख द्वेष धर्म अधर्म और भावनाख्य संस्कार ये जो आत्माक प्रकारक विशेष गुण हैं, इन नव प्रकारक विशेष गुण का जो अत्यन्त समुच्छेद उसे मोक्ष कहते हैं यद्वा दुःख प्रागभाव को मोक्ष कहते हैं। अन्य कोई व्यक्ति तो अपहतपाप्मत्वादिगुण विशिष्ट नित्य शुद्ध सर्वलेपरहित जो परमात्मा है वही उपाधि के सम्बन्ध से जीवभाव को प्राप्त कर जाते हैं और उपाधि के विनाश होने पर जो परमात्माभाव है उसी को मोक्षस्वरूप से निरूपण करते हैं। वासना सहित अनादिकर्मरूप अविद्या का उच्छेद

पूर्वक आविर्भूत है अपहत पाप्मत्वादि गुणाष्टक विशिष्ट जीव को अप्राकृत देश विशेष विशिष्ट परमात्मा का जो अनुभव उसी को मोक्ष कहते हैं अन्य कोई वैदिक सम्प्र दायवादी लोग । सांख्य वाले पुष्कर पलाश के समान सर्व लेपरहित आत्मा को प्रकृतिपुरुष के अविवेकजन्य भोक्तृभाव के विच्छेद को ही मोक्ष कहते हैं । एवं अनेक प्रकारक विप्रतिपत्ति से संशयाकुलित नचिकेता आत्मा है अथवा नहीं है इत्याकारक विप्रतिपत्ति द्वय से सब विप्रतिपत्तियों का संग्रह करके संशय स्वरूप को बतला करके नित्य निरतिशय सुखस्वरूप मोक्ष काल में मुक्त का क्या स्वरूप रहता है ? इस बात को पूछने के लिये प्रक्रम करते हैं-'**येयम्**' इत्यादि से, प्रेत अर्थात् प्रकृष्ट रूपसे इत अर्थात् तत्तद्ध वादियों से स्वीकृत सकल बन्धन मुक्त मनुष्य में मोक्षाधिकारी जीव में यह अनुभूय मान अर्थात् स्वकीय बुद्धि से विषयीक्रियमाण जो विचि कित्सा संदेह वह उत्पन्न होता है । विचिकित्सा संदेह के कारण विप्रतिपत्ति को बतलाते हैं '**अस्तीत्येके**' इत्यादि से । सबप्रकार के बन्धन के अभाव हो जाने पर यह आत्मा है ऐसा कोई कोई कहते हैं । कोई कहते हैं कि यह आत्मा शरीरादिरूप बन्धन निवृत्ति के अनन्तर में नहीं रहता है ऐसा स्वरूपोच्छेद रूप मोक्ष मानने वाले

कहते हैं। अतः यह जो आत्मस्वरूप वह मोक्ष, किस दशा में किस प्रकार का है, इस बात को, विदित है आत्मा की यथार्थता जिसे एतादश सर्वज्ञ आप सदृश सर्वज्ञकल्प गुरु से उपदिश्यमान हो करके मैं नचिकेता जिस प्रकार से जान सकूँ, इसप्रकार से आप मुझे उपदेश देने का कष्ट करें। आपसे देने के लिये प्रतिज्ञात तीन वरों के मध्य में यह मोक्षस्वरूप विषयक मुझ से प्रार्थ्यमान तृतीय वर है। इसप्रकार से नचिकेता ने तृतीय वर के उपदेश के लिये प्रार्थना की ॥२१॥

देवैरत्रापि विचिकित्सितं पुरा नहि सुविज्ञेयमणुरेष धर्मः। अन्यं वरं नचिकेतो वृणीष्व मामोपरोत्सीरति मा सृजैनम् ॥२२॥

हे नचिकेता ? इस परलोक आदि के विषय में प्रथम युग में दूरदर्शी दिवों ने भी सन्देह व्यक्त किया था क्योंकि यह प्रेत या मोक्ष चिन्तन बहुत सूक्ष्म धर्म-विषयक है सरलता से नहीं जाना जा सकता है अतः तुम अन्य कोई वर मांगो मुझे इस विषय में रोके मत रखो इस वर को मेरे हेतु रहने दो ॥२२॥

एवं मोक्षस्वरूपं नचिकेतसा पृष्टोऽपि मृत्युः पृष्टार्थस्य गम्भीरतयाशिष्याधिकारपरीक्षणं विना तदिच्छामात्रेणोपदेष्टुमनिच्छन् तदधिकारं परीक्षितुमाह देवैरिति। मनुष्यापेक्षया आजानसिद्धप्रकृष्टज्ञाना हि

देवा भवन्ति तैर्देवैरपि अत्र मुक्तात्मस्वरूपे पुरा विचिकित्सितम् संशयितम् पुरा सृष्ट्युत्तरकाल अतो देवानामपि दुर्विज्ञानमिदमिति भवादृशानां मनुष्याणां कृते तु अत्यन्तं दुर्विज्ञानमितिभाव: । एतत् मुक्तात्म स्वरूपम् नहि सुज्ञेयम् सरलतया ज्ञातुमशक्यम् हि यत एष मुक्तात्मस्वरूपो धर्म: ध्रियमाणत्वात् परमात्मना, आत्मस्वरूपमपि धर्म: परमात्माधीनस्वरूपस्थितिप्र वृत्तिर्हि आत्मेतिभाव: । अणुरतिसूक्ष्म: अत एतस्यो पदेशे मया कृतेऽपि यदि त्वं ज्ञातुं न शक्नुया: तदा निष्फलमेव भविता तव नैतद्वरवरणम् तस्मात् हे नचिकेत: अन्यम् मुक्तात्मस्वरूपापेक्षया भिन्नं ज्ञातुमर्हं निश्चितफलं कमपि वरं यथेच्छं वृणीष्व प्रार्थयस्व । मा माम् मा उपरोत्सी इममुक्तात्मस्वरूपोपदेशाय मम उपरोधं न कुरु । यद्वा मामेति वीप्सायां द्वित्वम् । तथा च निषेधार्थकमापदद्वयेन अत्र विषये निर्बन्धं नैवाच-रेत्यर्थ: । एनं प्रतिज्ञातवरत्रयं मां मृत्युमतिसृज मुक्त स्वरूपोपदेशात् विमुञ्च । यद्वा मा मां प्रति एनं वरम् अतिसृज विमुञ्चेत्यर्थ: । यद्यपि वरत्रयप्रदानात् पूर्वम हमधर्मण इवास्मि तथापि त्वादृशजनदुर्विज्ञेयेऽत्र मुक्तात्मस्वरूपे उपदेशदानाय उत्तपर्ण इव कदाग्रहं न कुरुष्वेतिभाव: ॥२२॥

इस पूर्वोक्त प्रकार से नचिकेता से पूछने पर, पूछे हुए मोक्ष स्वरूप के अतिगम्भीर होने के कारण शिष्य की योग्यता का परीक्षण किये बिना, शिष्य की इच्छामात्र से उपदेश नहीं करने की इच्छा से पहले शिष्य की योग्यता का परीक्षण करने के लिये यमराज कहते हैं- **'देवैरत्रापीत्यादि'** हे नचिकेता ? मनुष्य की अपेक्षया आजान सिद्ध जो देवतालोग हैं वे अधिकतर विज्ञानवान् होते हैं। वे देवतालोग भी इस मुक्तात्मस्वरूप के विषय में पहले सृष्टि के अनन्तर काल में इस विषय में संशय शील हुए थे। अतः देवताओं के लिये भी यह विषय दुर्विज्ञान है तब तुम्हारे सदृश मनुष्य के लिये तो अतिदुर्विज्ञान है। यह मुक्तात्मस्वरूप सरलता रूपसे जानने के योग्य नहीं है, क्योंकि मुक्तात्मस्वरूप लक्षण जो धर्म है परमात्मा से धार्यमाण होने से इसे धर्म कहते हैं। आत्मस्वरूप भी धर्म ही है क्योंकि परमात्मा के अधीन ही स्वरूप स्थितिवान् आत्मा है। यह धर्म अणु है अर्थात् अतिसूक्ष्म है अतः इसका उपदेश मैं करूँगा भी और यदि तुम इसे नहीं जान सकोगे तो मेरा सब प्रयत्न निष्फल ही हो जायगा। इसलिये तुम्हारा यह वर उचित नहीं है। इस कारण से हे नचिकेता ? मुक्त स्वरूप विषयक प्रश्न की अपेक्षया भिन्न जानने के योग्य

निश्चित फलक किसी अन्य वर को स्वेच्छया हम से पूछो । और मुक्तात्मस्वरूप विषयक प्रश्न के उत्तर के लिये अधिक आग्रह मत करो । यद्वा-मां माम् यह वीप्सा में द्विर्वचन है, तब निषेधार्थक आपत्ति रूपसे अधिक आग्रह नहीं करो । अथवा मेरे प्रति इस वर का त्याग करो । यद्यपि तीनों वर देने से पूर्व में मैं तुम्हारा अधमर्ण (ऋणी) जैसा हूँ, तथापि तुम्हारे सदृश मनुष्यों के लिये दुर्विज्ञेय इस आत्मस्वरूप में उपदेश देने के लिये तुम उत्तमर्ण के समान दुराग्रह मत करो । इस वर को छोडकर अन्य वर की प्रार्थना करो ॥२२॥

देवैरत्रापि विचिकित्सितं किल त्वञ्च मृत्यो यन्न सुविज्ञेयमात्त्थ । वक्ता चास्य त्वादृगन्यो न लभ्यो नान्यो वरस्तुल्य एतस्य कश्चित् ॥२३॥

हे यमदेव ? प्रेतात्मा-या परलोक के विषय में देवताओं ने भी सन्देह किया था एवं आप मुक्तात्मा के विषय में सरलतया जानने योग्य नहीं ऐसा कहते हो यह ठीक ही है पर मुक्त जीव के विषय में उपदेष्टा आपके जैसा अन्य नहीं प्राप्त हो सकता है अतः अन्य कोई भी वर इस वर के तुल्य नहीं है ॥२३॥

एवं मृत्युना एतादृशवरत्यागाय प्रेर्यमाणोऽपि नचिकेताः न ततश्चचाल आह च अत्र मुक्तात्मस्वरूप

विषये देवैरपि विचिकित्सितम् संशयितम् किल-इदं तु भवतः सकाशादेवावगतम् हे मृत्यो त्वञ्च न सुविज्ञेयम् न सारल्येन ज्ञातुमर्हम् इति यत् मुक्तात्मतत्त्वमात्थ कथयसि अस्य दुर्विज्ञानस्य वक्ता मया मनुष्येषु सादरमन्विष्यमाणोऽपि न लभ्यः न प्राप्यः किञ्च एतस्य वरस्य तुल्यः अन्यः कश्चित् वरोऽपि नास्ति परमपुरुषार्थरूपनित्यफलप्राप्तिर्हि वरोऽयम् अन्यस्त्वे तदपेक्षया सर्वोऽपि न परमपुरुषार्थप्राप्तिकरः अतोऽनि त्यफलः, तस्मात् यदि त्वादृशमपरवक्तारम्, एतद्वरस दृशमपरवरं च प्राप्नुयाम् समन्वेषणपरोऽपि तदैवत्वा मेतद्वरप्रदानाय न निर्बध्नीयाम् एनं परं च मुञ्चेयम् नान्यथेतिभावः ॥२३॥

इसप्रकार यमराज से एतादृश मुक्तात्मस्वरूप वर त्याग करने के प्रेर्यमाण भी नचिकेता अपने आग्रह से विचलित नहीं हुआ और यमराज के प्रति बोला भी हे यमराज ? इस मुक्तात्म स्वरूप विषय में पूर्वकाल में देवतालोग भी संशय युक्त हुए थे ऐसा मैं आप से जान रहा हूँ । और आप भी कहते हैं कि यह आत्मतत्व सरलतापूर्वक जानने के योग्य नहीं है । दुर्विज्ञान जो यह आत्मतत्व उसे जानने वाला आपके सदृश सर्वधर्म को जानने वाला मनुष्य में खोजने पर भी कथमपि कोई

उपलब्ध नहीं होता है । और भी देखिये इस वर के तुल्य अन्य कोई वर भी नहीं है । यह परमपुरुषार्थरूप जो नित्यफल तद्रूप ही वर है अन्य जो वर है वह एतदपेक्षया सभी परमपुरुषार्थ का प्रापक नहीं है इसलिये वे सब अनित्य फलक हैं । इसलिये यदि आपके सदृश वक्ता तथा इस वर के सदृश यदि कोई भी अन्य वर को प्राप्त करुँ तब मैं इस वर को प्राप्त करने के लिये दुराग्रह न करुँ तथा इस वर को छोड दूँ, परन्तु इस वर के तुल्य कोई दूसरा वर नहीं है तथा आपके सदृश सर्वधर्मवेत्ता कोई वक्ता भी नहीं है ॥२३॥

शतायुषः पुत्रपौत्रान् वृणीष्व बहून् पशून् हस्तिहिरण्यमश्वान् । भूमेर्महदायतनं वृणीष्व स्वयं च जीव शरदो यावदिच्छसि ॥२४॥

सौ वर्ष की जीवनी पुत्र तथा पौत्र एवं बहुत गाय और हाथी घोडे एवं सुवर्ण को मांगो भूमि का बडा भाग बहुत फैला हुआ साम्राज्य को मांगो एवं स्वयं तुम भी जितने वर्षों तक चाहो जीओ ॥२४॥

एवमुक्तोऽपि मृत्युः तस्मै स विद्वानुपसन्नाय प्रशान्तचित्तायेत्यादिश्रुतिप्रोक्तं प्रशान्तचित्तत्वमस्य परीक्षितुं प्रलोभयति शतायुषः इति । शतायुषः शतम् वर्षाणि आयूंषि येषाम् तान् शतवर्षप्रमाणजीवनान्

पुत्रपौत्रान् पुत्रांश्च पौत्रांश्च तान् वृणीष्व प्रार्थयस्व, बहून् यथेप्सितसंख्याकान् पशून् गोमहिष्यादीन् वृणीष्व, हस्तिहिरण्यम् हस्ती च हिरण्यञ्च हस्तिहिरण्यम् जातावेकवचनम् । अत्रापि बहूनिति विशेषणं योज्यम् ईप्सितसंख्याकान् हस्तिनः ईप्सितपरिमाणं हिरण्यञ्च वृणीष्व । अश्वान् अपि बहून् वृणीष्व । किञ्च भूमेः पृथिव्याः महत् अतिविस्तृतम् आयतनम् मण्डलम् चत्वारिंशद्योजनपरिमितदेशसंज्ञितं राज्यं वृणीष्व, यद्वा भूसम्बन्धिमहत् विपुलम् आयतनम् शालाप्रासादादिविशिष्टगेहं वृणीष्वेत्यर्थः । किञ्च सर्वमेतद् विफलं यदि तवायुरेवाल्पं स्यात् अतः यावद् वर्षाणि जीवितुं वाञ्छसि तावत् शरदः वर्षाणि स्वयं जीव शतायुर्वै मनुष्यः इति नियमस्तु तव पुत्रपौत्रेष्वेव न त्वयीति त्वं तन्नियममनादृत्य इच्छानुसारं चिरंजीवेतीतिभावः ।२४।

इसप्रकार नचिकेता के कहने के वाद वह यमराज 'वह विद्वान् आचार्य विद्याध्ययन करने के लिये समीप में आगत प्रशान्तचित्त शिष्य को' इत्यादि श्रुतिप्रतिपादित प्रशान्तचित्तत्व की परीक्षा करने के लिये प्रलोभित करने के लिये कहते हैं-'शतायुषः पुत्रपौत्रानित्यादि' सौ वर्ष है आयु जिसकी अर्थात् शतवर्ष प्रमाणक जीवन वाला पुत्र तथा पौत्रादि सन्तान की प्रार्थना करो, स्वाभीष्ट

संख्या वाला अनेक गोमहिषादिक पशुओं को हम से मांगो। हाथी तथा हिरण्य सोना आदि हम से मांगो। '**हस्तिहिरण्यम्**' यहां जाति में एकवचन है। परन्तु यहां '**बहून्**' यह विशेषण देना चाहिये। यथेच्छ संख्या वाला हाथी आदि स्वाभिलषित परिमाण वाला सोना तथा अनेक अश्व घोडा हम से मांगो। और भूमि पृथिवी का अतिविस्तृत आयतन मण्डल अर्थात् चालिस योजन परिमित देश को हम से मांगो। अथवा भूमि सम्बन्धी महान् विपुल-आयतन अर्थात् प्रासादादि विशिष्ट विलक्षण घर हम से मांगो। और भी ये सब जो तुम को दूँगा ये सब निरर्थक हो जायेंगे यदि तुम्हारी आयु अल्प हो इसलिये जितने वर्ष तुम जीना चाहते हो उतने वर्ष तक तुम जीवित रहो। यद्यपि-'**शतायुर्वैपुरुषः**' यह नियम है तथापि यह नियम तुम्हारे पुत्र पौत्र विषयक है तुम्हारे लिये नहीं है। अतः तादृश नियम को छोडकर स्वकीय इच्छानुसार तुम जीवित रहो।।२४।।

एतत्तुल्यं यदि मन्यसे वरं वृणीष्व वित्तं चिरजीविकाञ्च। महाभूमौ नचिकेतस्त्वमेधि कामानां त्वा कामभाजं करोमि ।।२५।।

हे नचिकेता ? तुम यदि धन तथा चिरकाल तक जीवन या

अन्य कोई साधन को मुक्तात्मा विषयक ज्ञान के तुल्य वरदान को मानते हो तो उसे मांगो एवं तुम इस महाभूमि में बडा सम्राट् बन जाओ मैं तुझे अभिलषित पदार्थों के अपनी इच्छा के अनुसार भोग भोगने वाला कर देता हूँ ॥२५॥

एतत्तुल्यम् एतेन मदुक्तेन वरेण तुल्यं सदृशं वरं कमपि अपरं यदि मन्यसे तर्हि तमपि वृणीष्व । वित्तम् मुक्ताफलमाणिक्यादिमहार्घरत्नरूपं प्रभूतमपि वृणीष्व । चिरजीविकाम् चिरकालपर्यन्तं जीवनञ्च वृणीष्व । हे नचिकेतः महाभूमौ महती चासौ भूमिः महाभूमिः तत्र आसमुद्रान्तभूभागे एतन्नाम्नैव त्वं एधि वर्धस्व सर्वोत्कृष्टः राजमूर्धन्यो भवेत्यर्थः । किञ्च अत्रैव महाभूमौ कामानां काम्यन्ते इति कामाः दिव्यस्त्रक्चन्दनाप्सरः प्रभृतयः तेषां कामभाजम् कामनाविषयं त्वां करोमि । अप्सरः प्रभृतयः भूमौ स्थितमपि यथा कामयेरन् तथा त्वां करोमीतिभावः ॥२५॥

'एतत्तुल्यमित्यादि' इस मदुक्त वर से तुल्य सदृश यदि कोई दूसरे वर के समान वर समझते हो तो तादृश वर की प्रार्थना हम से करो । वित्तमुक्तामणि माणिक्य प्रभृति बहुमूल्य अत्यधिक धन की इच्छा हो तो वह हम से मांगो । तथा चिरकाल स्थायी जीविका अथवा चिर जीवन की प्रार्थना हम से करो । तथा हे नचिकेता ?

महाभूमि में आसमुद्रान्त भू-भाग में इसी नाम से तुम वृद्धि को प्राप्त करो। अर्थात् सबसे उत्कृष्ट राजशिरोमणि तुम बनो। और हे नचिकेता ? इस महाभूमि के अन्दर तुम को कामभागी बनाता हूँ, अर्थात् दिव्यमाला चन्दन अप्सरा प्रभृतिक काम्यमान विषय से तुमको संयुक्त करता हूँ, स्वर्ग समुद्भव अप्सरा प्रभृतिक कमनीय पदार्थ भूमि स्थित भी तुमको प्राप्त हो ॥२५॥

ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके सर्वान् कामान् छन्दतः प्रार्थयस्व। इमा रामाः सरथाः सतूर्या नहीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः। आभिर्मत् प्रत्ताभिः परिचारयस्व नचिकेतो मरणं मा नु प्राक्षीः ॥२६॥

हे नचिकेता ? मर्त्यलोक में दुर्लभ जो जो भोग सामग्री हैं उन सभी भोगों को इच्छा के अनुसार मांगो अनेक प्रकार के वाद्यों के साथ एवं रथों के साथ इन स्त्रियों को भी मांगो क्योंकि ऐसी स्त्रियां मनुष्यों से सहसा प्राप्य नहीं हैं मुझसे दी हुई इन स्त्रियों से परिचर्या कराओ परन्तु मृत्यु के वाद क्या होता है इस विषय को मत पूछो ॥२६॥

मर्त्यलोके भूलोके ये ये कामा विषयाः दुर्लभा दुःखेन लब्धुं शक्याः तान् सर्वान् कामान् छन्दतः स्वेच्छानुसारम् प्रार्थयस्व याचस्व, यतो मर्त्यलोके

जातेन मर्त्यदुर्लभमेव प्रार्थनीयम् त्वमपि तथैवासीति भावः । इमाः पुरतो मत्प्रसादेन त्वयाऽपि दृश्यमानाः दिव्याः रामाः-रमयन्ति पुरुषं याः ताः अप्सरसः, सरथाः दिव्यैः रथैः सहिताः सतूर्याः तूर्यैः नृत्यगीत साधनयुतैः दिव्यैर्वादित्रैः सहिताश्च सन्ति याः मनुष्या णां दुर्लभाः ताः अपि गृहाण । ईदृशाः दिव्याः स्त्रियः मनुष्यैः मानवैः न लम्भनीयाः न प्राप्याः, मनुष्यदुर्ल भत्वमासां प्रसिद्धमेवेतिभावः । तस्मात् आभिर्दिव्या भिः मत्प्रदत्ताभिः मया तुभ्यमर्पिताभिः परिचारिका भिः परिचारयस्व पादसंवाहननृत्यप्रदर्शनगीतश्रावणा दिशुश्रूषां कारय । देहान्तरेणापि एतदीयशुश्रूषां काम यमानाः महता महाधनव्ययेन श्रमेण च यागादिकमाच रन्ति त्वं तु तदन्तरैव एतेनैव शरीरेण एतासां शुश्रूषां प्राप्स्यसि अत एतावतैव संतोषमाधारयस्व । हे नचिकेतः मरणम् अनु सर्वबन्धविनिर्मुक्तेः पश्चात् यत् मुक्तात्मस्वरूपम् तत् मा प्राक्षीः न पृच्छ ॥२६॥

'ये ये कामा' इत्यादि । हे नचिकेता ? इस मर्त्यलोक अर्थात् भूलोक में जो जो काम्यमान विषय समुदाय दुर्लभ हैं अतिकठिनतया प्राप्त होने के योग्य हैं उन सब कमनीय पदार्थों की स्वेच्छया हम से प्रार्थना करो मांगो क्योंकि मर्त्यलोक में उत्पन्न जो व्यक्ति हैं वे

मर्त्य दुर्लभ वस्तु की ही इच्छा करता है-तुम भी मर्त्य जात हो इसलिये तुम भी उसकी याचना करो। ये सब आगे में स्थित मेरी प्रसन्नता से तुम से भी देखने के योग्य दिव्य रामा पुरुषों की मनोमोहक अप्सरायें जो कि रथ से युक्त हैं तथा सतूर्य नृत्यगीत साधनों से युक्त हैं तथा दिव्य वाद्यों से युक्य हैं तथा जो मनुष्यों के लिये अतिदुर्लभ हैं इन सब को तुम ग्रहण करो। एतादृश दिव्य स्त्री समुदाय मनुष्यों से प्राप्तव्य नहीं हैं। ये सब मनुष्य दुर्लभ हैं यह बात लोक प्रसिद्ध है। इसलिये मुझ से प्रदत्त इन दिव्य स्त्रियों से जो कि परिचारिका हैं उनसे पाद संवाहन नृत्य प्रदर्शन गीत श्रवणादि शुश्रूषा कराओ, स्वर्गीय देह को प्राप्त करके इन सब की शुश्रूषा चाहने वाले महान् धनव्यय तथा श्रम से यागादि क्रिया का सम्पादन करते हैं। तुम तो महान् व्यय श्रम के बिना ही इस शरीर से ही एतादृश विलक्षण शुश्रूंषा को प्राप्त करोगे। इसलिये इतने से ही संतोष करो। हे नचिकेता ? तुम मरण को अर्थात् सर्वबन्ध विनिर्मुक्ति के वाद जो मुक्तात्मस्वरूप है उसे मत पूछो अर्थात् मरण विषयक प्रश्न मत करो ॥२६॥

एवं बहुधा प्रलोभ्यमानो हि मृत्युना असंजात क्षोमो नचिकेताः प्राह-

श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत् सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः । अपि सर्वं जीवितमल्पमेव तवैव वाहाः तव नृत्यगीते ॥२७॥

हे यमदेव ? कलतक न रहने वाले क्षणिक भोग मानव के सभी इन्द्रियों के तेज को जीर्ण कर देते हैं इतना ही नहीं मानव का यह जीवन है वह भी अल्प ही है अतः आपसे निर्दिष्ट वाहन नृत्य एवं गीत सम्बन्धी साधन आपके ही पास रहें ॥२७॥

हे अन्तक? मृत्यो मर्त्यस्य कृते ये कामाः पुत्रपौत्रहस्तिहिरण्यादयः त्वया प्रार्थ्यत्वेन उपस्थापिताः ते सर्वेऽपि श्वोऽभावाः श्वः अभावो येषाम् तादृशाः दिनद्वयस्थायिनोऽपि निश्चितरूपेण नश्यन्ति श्वोभविष्यन्ति न वेति संदिह्यमानत्वात् तेषाम् । यदेतदपरं प्रलोभनमुक्तम् अप्सरः प्रभृतिस्तदपि न प्रार्थ्यम्, यतः एताः अप्सरसः सर्वेन्द्रियाणां बाह्यानामान्तराणाञ्च करणानां तेजः जरयन्ति क्षपयन्ति । अतः प्रज्ञावीर्यधर्मयशः प्रभृतिक्षपयितृत्वादनर्थहेतव एव ता इतिभावः । या तु चिरजीविका प्रलोभयितुं त्वया प्रदातुमाख्याता साऽपि न प्राज्ञमतेः प्ररोचनोपयुक्ता यतः सर्वमपि जीवितमल्पमेव । ब्रह्मा एव सर्वजीवानामग्रणीः तस्यापि जीवनम् सावधित्वादल्पमेव किमितरेषां जीव

नस्याल्पत्ववर्णनेन । तस्मात् त्वत्प्रदर्शितात् मानुषात् दिव्याच्चभोगात् चिरजीवनाच्च विरक्तस्य मे त्वत्तो लब्धैरेभिः किम् कार्यम्, अतः ते त्वया दर्शिताः वाहा-अश्वादयः, तवैव सन्तु नैतैः साध्यं किमपि मम प्रयोजनम् । नृत्यगीते, नृत्यं च गीतञ्च नृत्यगीते अपि तवैव भवताम् नाभ्यामपि विरक्तस्य मे प्रयोजनम् इतिभावः ॥२७॥

इसप्रकार यमराज से अनेक प्रकार से प्रलोभित भी नचिकेता महासामरवत् क्षोभ को नहीं प्राप्त करता हुआ बोला-'श्वोभावा' इत्यादि से । हे अन्तक यमराज ? मर्त्य मनुष्य के लिये जो काम है अर्थात् पुत्र पौत्र हस्ति हिरण्यादिक आपने प्रार्थनीयतया उपस्थित किये हैं ये सब पदार्थ श्वोभाव हैं अर्थात् श्वः दिनान्त में अभाव है जिनका एतादृश हैं ये सब दो चार दिन के रहने वाले नियमतः नष्ट होने वाले हैं क्योंकि ये सब आगे के दिन में होंगे कि नहीं होंगे इस प्रकार संदिह्यमान हैं । और आपने जो यह अन्य प्रलोभन दिया अप्सरा प्रभृति का परन्तु ये सब भी प्रार्थनीय नहीं हैं क्योंकि ये अप्सरायें मनुष्यों के सब इन्द्रिय का बाह्य आनन्तर करण चक्षुरा दिक का जो तेज सामर्थ्य है तादृश इन्द्रिय सम्बन्धी तेज को नष्ट करने वाले हैं अतः प्रज्ञा वीर्य धर्म यश प्रभृति

के विनाशक होने से ये सब अनर्थ के कारण हैं अतः सब त्याज्य हैं। जो भी आपने प्रलोभन रूपमें चिरजीविका देने का कथन किया वह भी बुद्धिमानों के लिये प्रलोभन के योग्य नहीं है क्योंकि जीवन तो अत्यल्प है। ब्रह्मा हिरण्य गर्भ ही सब जीवों से अधिक आयु वाले हैं परन्तु ब्रह्मा का जीवन ही सावधिक होने से अल्प जब है तब इतर जीवों के जीवन की अल्पता का वर्णन करने की चर्चा ही क्या ? इसलिये आपसे प्रदर्शित मनुष्य यद्वा देवता सम्बन्धी इन विषयों से और चिरजीवन विरक्त जो मैं हूँ, एतादृश मुझे आप से प्राप्त इन सब वस्तुओं से मुझे कोई भी प्रयोजन नहीं है। इसलिये आपने जो बतलाया है वाह–अश्वगजादिक वह सब आपका ही रहे। इन सब से कुछ भी प्रयोजन मुझे साधनीय नहीं है। एवं नृत्य गीतादिक भी आपको ही रहे। विरक्त मुझे नृत्यगीतादिक से कोई प्रयोजन नहीं है ॥२७॥

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत्त्वा। जीविष्यामो यावदीशिष्यसि त्वं वरस्तु मे वरणीयः स एव ॥२८॥

मनुष्य वित्त–सम्पत्ति से तृप्त नहीं होता है हमने आपको देख ही

लिया है अतः हम धन पाही लेंगे एवं आप जबतक चाहेंगे तबतक हम जीयेंगे ही तब मेरे मांगने योग्य वर तो वही मृत्यु विषयक ही है अन्य नहीं ॥२८॥

मनुष्यः वित्तेन-प्रभूतेनापि न तर्पणीयः न सन्तोष मापादनीयः, नहि वित्तलाभेन कस्यचिदपि तृप्तिर्दृष्टचरी न आशाया अवधिशून्यत्वात् । तथापि वित्ताशा यदि स्यात् तर्हि वित्तं लप्स्यामहे प्रास्यामो वयमवश्यमेव त्वाम् महोदारस्वभावं समर्थं महापुरुषमद्राक्ष्म दृष्ट वन्तः । नहि भवादृशमहोदारमहापुरुषदर्शने सत्यपि वित्तचिन्ताऽस्मान् बाधेत कदापीतिभावः । यावत् कालं त्वम् ईशिष्यसि याम्ये पदे स्थितः सन् जीवनं नियमिष्यसि तावत्कालं वयमपि जीविष्यामः एव यतोऽस्मत्प्रणयिनस्तवाज्ञामतिक्रम्य मदीयजीवनान्तर-कृत् को नामभवेत् वरस्वीकारास्वीकारेऽपि सर्वमेतत् सिद्धमेवास्माकम् अतोहेतोः 'येयं प्रेते' इत्यादिना पूर्वं प्रस्तुतो यो वरः स एव वरः मुक्तात्मस्वरूपविषयः वरणीयः प्रार्थनीयो नान्य इतिभावः ॥२८॥

'न वित्तेनेत्यादि' अनेक प्रकारक वित्त धनादिक से मनुष्य तृप्त सन्तुष्ट नहीं हो सकता है । वित्त से किसी को तृप्ति होती है ऐसा कहीं देखने में नहीं आता है । न वा आशा की निवृत्ति होती है क्योंकि यह आशा

अवधिरहित है। तथापि यदि मुझे धन विषयक इच्छा होगी तो वित्त को अवश्यमेव प्राप्त करूँगा, क्योंकि महा उदार स्वभाव सर्वसमर्थ आपका जब दर्शन हो गया है तब अवश्यमेव धन को प्राप्त कर ही लूँगा। आपके सदृश महोदार महापुरुष के दर्शन हो जाने पर वित्त की चिन्ता मुझे कभी भी बाधित नहीं कर सकेगी। और जबतक आप नियन्त्रण कर रहे हैं अर्थात् यावत् काल पर्यन्त इस याम्य पद पर आप स्थित होकर जीवन का नियंत्रण करेंगे तावत् काल पर्यन्त मैं भी अवश्य जीवित रहूँगा, क्योंकि मेरे हितेच्छु आपकी आज्ञा को अतिक्रमण करके मेरे जीवन का अन्त करनेवाला कौन हो सकता है। वर के स्वीकार अथवा अस्वीकार करने पर भी यह सब मुझे सिद्ध ही है। इस कारण से **'येयं प्रेते'** इत्यादि प्रकरण से जो वर प्रस्तुत है वही मुक्तात्मस्वरूप विषयक वर मुझसे प्रार्थनीय है इससे अन्य वर की प्रार्थना करने की कोई आवश्यकता नहीं है ॥२८॥

अजीर्यताममृतानामुपेत्य जीर्यन्मर्त्यः क्वधः स्थः प्रजानन्। अभिध्यायन् वर्णरतिप्रमोदान् अतिदीर्घे जीविते को रमेत ॥२९॥

जरा एवं मृत्यु रहित अमृत-यानी मुक्तात्मा स्वरूप को प्राप्तकर

तत्वों को ठीक से जानने वाला साधक जरा तथा मृत्यु से जीर्ण होने वाला मरणशील जीव जरा एवं मृत्यु से युक्त आमोद प्रमोद हेतुक अप्सरा आदि में ध्यान कैसे देगा मुक्ति स्थानीय शरीर विशेष तथा ब्रह्म सम्बन्धी आनन्द स्वरूप को ठीक तरह से निरूपण करने वाला क्षणिक इस जीवन में कौन रमण करेगा ॥२९॥

किञ्च जीर्यन् जरामरणाद्युपद्रुतः क्वधःस्थः कुः पृथिवी सा तु अधः अन्तरिक्षादिलोकापेक्षयास्ति तत्र तिष्ठतीति क्वधःस्थः भूतलवर्ती, यद्वा कुः कुत्सितः दुःखप्रचुरत्वात् अधः अधोदेशः तत्र तिष्ठतीति क्वधः स्थः मनुष्यलोके स्थितः कः मर्त्यः, अमृतानाम्-जरा मरणशून्यानां मुक्तानामात्मनां स्वरूप उपेत्य ज्ञात्वा, गत्यर्थकेणधातोः ज्ञातार्थकत्वसंभवात् । प्रजानन् स्वीयजरामरणाद्युपप्लवदुःखबहुलाधोदेशवृत्तित्वं च प्रकर्षेण सम्यक्तया जानन् अनुभवत् सन् । वर्ण रतिप्रमोदान् अभिध्यायन् वर्णाः अप्सरः प्रभृतिगतरू पलावण्यादयः । रतिः तत्कृतस्नेहादिः । प्रमोदः सत्सं भोगजन्यः सुखविशेषः तान् अभिध्यायन् उत्कण्ठा कुलितचेतसाऽनुचिन्तयन् अतिदीर्घे जीविते भवता दिप्सितायां चिरजीविकायां रमेत । अपहतपाप्मत्वसत्य कामत्वसत्यसंकल्पत्वाद्याविर्भूतगुणाष्टकविशिष्टमुक्तात्म स्वरूपज्ञाने सति कोऽपि जरामरणधर्मा विवेकी अप्स रः प्रभृतिभोगेषु चिरजीवनान्वितेषु अपि रुचिं नैव

कुर्यादितिभावः ।

क्वचित् 'अतिदीर्घे' इत्यत्र 'अनतिदीर्घे' इति पाठः क्वधःस्थः इत्यत्र क्वचित्तदास्थः इति पाठः । तत्पक्षे-तत्र अप्सरः प्रभृति भोगे आस्था आस्थि तिर्वतनं यस्य सः तदास्थः एवं भूतः क्व कथं भ- वेन्मर्त्यो विवेकीत्यर्थः । वर्णाः 'आदित्यवर्णं तमसः प रस्ता' दित्यादिश्रुतिश्रुताः । रतिप्रमोदाः अप्राकृतदेश वर्तिपर मपुरुषानुभवजन्यसुखविशेषाः तान् अभिध्यायन् नैपुण्येन समालोचयन् अनतिदीर्घे अत्यल्पे-जीवने कः रमेत कः प्रीतिमान् स्यात् न कोऽपीत्येवं व्याख्या योजनीया ॥२९॥

'अजीर्यताम्' इत्यादि । और भी जीर्यन् जन्ममरण जरादिकों से उपद्रुत कु पृथिवी वह पृथिवी अन्तरिक्ष लोक की अपेक्षा से **अधः** प्रदेश में है उस पृथिवी में एतादृश पृथिवी के ऊपर रहनेवाला अर्थात् भूतल प्रदेश में रहनेवाला । अथवा कु शब्द का अर्थ होता है कुत्सित दुःखाधिक होने से तथा अधोदेश नीच प्रदेश स्थित पृथिवी उसमें जो रहे अर्थात् मनुष्यलोक में वर्तमान कौन ऐसा मर्त्य मनुष्य होगा जो जरामरण रहित मुक्तात्म स्वरूप को जान करके । यहां यद्यपि गत्यर्थक इण् धातु है तथापि वह ज्ञानार्थक है । **'प्रजानन्'** इति स्वकीय

जन्म जरामरणादि से युक्त दुःख बहुल अधो देशवृत्तिता को समीचीन रूपसे जानता हुआ (अनुभव करता हुआ) वर्ण रति प्रमोद का अभिध्यान करता हुआ। अर्थात् अप्सरा प्रभृतिक मनोज्ञ वस्तुगतरूप लावण्यादिक। रति-अप्सरादि कृत स्नेह विशेष प्रमोद उनके सबके संभोग से जायमान सुख विशेष इन सब को उत्कण्ठा से आकुलित मन से अनुचिन्तन करता हुआ अति दीर्घ जीवन में तथा आपसे दिया हुआ जीविका विषय में कौन रमित होगा। अर्थात् अपहत पाप्मत्व सत्यकामत्व सत्यसंकल्पत्वादिक जो आविर्भूत गुणाष्टक तद्विशिष्ट मुक्त आत्मस्वरूप के ज्ञान हो जाने पर जरामरण धर्मा कोई भी विवेकी पुरुष अप्सरा प्रभृतिक भोग में चिरजीवनादिक में कौन रुचि करेगा, कोई भी नहीं कर सकता है।

किसी पुस्तक में-'**अतिदीर्घे**' इस स्थान पर-'**अनतिदीर्घे**' ऐसा पाठ है और-'**क्वधःस्थः**' इस स्थान में-'**तदास्थः**' ऐसा पाठ है। उस पक्ष में वहां अप्सरः प्रभृतिक भोग्य वस्तु में आस्था स्थिति अर्थात् वृत्ति है जिसे उसे तदास्थ कहते हैं। एतादृश मर्त्य विवेकी पुरुष किस तरह हो सकता है। '**तमसे परे आदित्यवर्णः**' इत्यादि श्रुति में प्रतिपादित वर्ण। तथा रति प्रमोद अप्राकृत लोकोत्तरदेश स्थित जो परमपुरुष तद्विषयक

अनुभव जनित सुख विशेष। इन सब का अभिध्यान अर्थात् अत्यल्प जीवन में कौन रमित होगा अर्थात् प्रीतिमान होगा ? अर्थात् कोई भी नहीं हो सकता है। इसप्रकार इसका व्याख्यान करना चाहिये ॥२९॥

यस्मिन्निदं विचिकित्सन्ति मृत्यो ! यत्सां पराये महति ब्रूहि नस्तत्। योऽयं वरो गूढमनु प्रविष्टो नान्यं तस्मान्नचिकेता वृणीते ॥३०॥

卐 इति काठकोपनिषदि प्रथमाध्यायस्य प्रथमावल्ली 卐

हे यमराज ? सभी प्रकार के बन्धन रहित हो जाने पर यह जो परलोक विषयक आत्मा के हेतु बडा सन्देह उपस्थापित करते हैं उसी को मेरे हेतु कहें यह जो गम्भीरता पूर्वक विचार विषयक वर मनमें प्रवेश कर गया है नचिकेता उस वर से भिन्न वर नहीं मांगता है ॥३०॥

हे मृत्यो यस्मिन् मुक्तात्मस्वरूपे इदम् अस्ति, नास्तीत्येवं रूपम् विचिकित्सन्ति मनुजाः देवाश्च संशयं कुर्वन्ति, महति महत्प्रयोजनान्विते सांपराये पारलौकिके सर्वबन्धविनिर्मुक्ते आत्मनिविषये यत् ज्ञातव्यम् तदेव नः अस्मभ्यं ब्रूहि समुपदिश, गूढम् अतिगुप्तम् यत्मुक्तात्मतत्वम् तदनुप्रविष्टः तद्गोचरो यो वरः तस्मात् अन्यमनात्मविषयं वरं नचिकेता अयं जनः त्वच्छिष्यतामुपगतो न वृणीते न प्रार्थयते। नचि

केता इति स्वनामनिर्देशः स्वस्य अप्रलोभनीयतां व्यञ्जयति । यद्वा श्रुतिरेवास्मान् बोधयति एतेन वाक्येन यत् नचिकेता अन्यं वरं न वृणीते इति ।

卐 इतिकाठकोपनिषदि आनन्दभाष्ये प्रथमाध्यायस्य प्रथमावल्ली ।३०। 卐

'यस्मिन्निदम्' इत्यादि । हे मृत्यो यमराज ? जिस मुक्त आत्मस्वरूप में यह है अथवा नहीं हैं इसप्रकार मनुष्य तथा देवता लोग संशय करते हैं । महान् प्रयोजन से युक्त सांपराय लौकिक अर्थात् सर्वबन्धन विनिर्मुक्त आत्मा के विषय में जो ज्ञातव्य है वही आप हमें बताइये । जो गूढ अत्यन्त गुप्त आत्म तत्व है तदनुप्रविष्ट अर्थात् तद्विषयक जो वर है उसी का उपदेश आप हमें दीजिये । उससे भिन्न अर्थात् अनात्म विषयक जो वर है उसे नचिकेता यह व्यक्ति जो कि आपका शिष्य है वह उसकी प्रार्थना नहीं करता है । यह नचिकेता इसप्रकार जो स्वकीय आत्मा का निर्देश किया है इससे नचिकेता अपने में लोभराहित्य को अभिव्यक्त करता है । अथवा श्रुति स्वयं हमलोगों को इस वाक्य से समझाती है कि नचिकेता एतदन्य वर की वरण-प्रार्थना नहीं करता है ॥३०॥

卐 इति काठकोपनिषदि श्रीमदानन्दभाष्यप्रकाशे प्रथमाध्यायस्य प्रथमावल्ली समाप्ता 卐

卐 ॐ 卐

卐 अथ प्रथमाध्यायस्य द्वितीयावल्ली 卐

अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते उभे नानार्थे पुरुषं सिनीतः । तयोः श्रेय-आददानस्य साधु भवति हीयतेऽर्थाद् य उ प्रेयो वृणीते ॥१॥

परीक्षा के वाद यम ने नचिकेता से कहा-श्रेय मुक्ति का मार्ग अन्य है एवं प्रेय-भोग मार्ग भी अन्य है वे दोनों श्रेय-प्रेय मार्ग अलग अलग फल प्रदाता हैं यों दोनों मुक्ति मार्ग एवं भोगमार्ग पुरुष को अपने अपने विषय की ओर खीचते हैं उनमें से श्रेय-कल्याण मार्ग लेने वाले का परिणाम साधु-अच्छा होता है एवं जो प्रेय-भोग मार्ग का अवलम्बन करता है वह मुक्तिरूप पुरुषार्थ से भ्रष्ट होता है ॥१॥

अथ शिष्यं सम्यक् परीक्ष्य तदीयमुमुक्षां सुस्थिरा मवगत्य मुमुक्षां मुमुक्षुं शिष्यञ्च प्रशंसितुकामो यमः पूर्वं श्रेयः प्रेयो वर्त्मनी पृथक्तया दर्शयति-अन्य दिति, श्रेयः प्रेयः शब्दैः मोक्षाभ्युदयपरावपि तत्साधन वर्त्मनोरत्र प्रतिपादकौ । श्रेयः अतिशयेन प्रशस्तं मोक्ष वर्त्मेत्यर्थः, अन्यत् भिन्नमेव, एवं प्रेयः अतिशयेन प्रियम् भोगवर्त्म, उतशब्दोऽप्यर्थः, तेन प्रेयोवर्त्माऽपि अन्यदेव, श्रेयोवर्त्मापेक्षया भिन्नावेव, उभयोः परस्पर वैलक्षण्यमस्तीतिभावः । वैलक्ष्यण्ये हेतुमाह-ते उभे ते पूर्वोक्ते श्रेयः प्रेयसो द्वे अपि । नानार्थे नाना परस्परवि लक्षणः अर्थः प्रयोजनं ययोस्ते भिन्नप्रयोजने एकस्य

मोक्षः अपरस्य तु अभ्युदयः प्रयोजनमितिभावः, एतेन प्रयोजनभेदो मार्गयोर्भेदहेतुः प्रदर्शितः । पुरुषं स्वस्वाधिकारिणम् सिनीतः वध्नीतः, श्रेयो वर्त्ममोक्षार्थिनं स्वस्मिन् प्रवर्तयति स्ववशे कृत्वा, प्रेयोवर्त्मतु अभ्युदयार्थिनं स्ववशे कृत्वा स्वस्मिन् प्रवर्तयतीतिभावः । तयोः श्रेयः प्रेयोमार्गयोः मध्ये श्रेयः श्रेयोमार्गम् आददानस्य गृह्णतः निःश्रेयसाय प्रयत्नमाचरतः साधु शिवम् निःश्रेयसमिति यावत् तदेव हि वास्तवं शिवम् नित्यत्वादितिभावः भवति । यः यस्तु प्रेयोऽभ्युदय वर्त्म वृणीते स्वीकरोति अभ्युदयसाधने ज्यौतिष्टोमादौ यत्नमादधाति स इत्यध्याहार्यम् अर्थात् परमपुरुषार्थात् निःश्रेयसात् हीयते वियुज्यते उ अवधारणे, पुरुषार्थात्स भ्रष्टोऽवश्यं भवतीत्यर्थः । मार्गवरण एव बुद्धेरुपयोगः प्रथमकार्यः त्वया मोक्षमार्ग एव वृत इति प्रशंसार्हस्त्वमिति शिष्यं प्रतिव्यनक्ति मृत्युरत्र मन्त्रे ।१।

शिष्य नचिकेता को समीचीन रूपसे परीक्षा करके तथा उसे मोक्षाधिकारी समझ करके एतादृश मुमुक्षु शिष्य की प्रशंसा करने की इच्छा करने के लिये यमराज प्रथमतः श्रेयस तथा प्रेयसरूप जो मार्गद्वय हैं उसे पृथक् पृथक् रूपसे बतलाने के लिये कहते हैं-**'अन्यच्छ्रेयः'** इत्यादि से । यद्यपि श्रेयस् तथा प्रेयस् शब्द मोक्ष तथा

अभ्युदय का बोधक हैं। तथापि मोक्ष अभ्युदय का साधन मार्गद्वय का प्रतिपादक यहां हैं। श्रेयस् अर्थात् अतिशय प्रशस्त मोक्ष मार्ग यह कुछ अन्य भिन्न ही है। एवं प्रेयस् अर्थात् अतिशयेन प्रिय भोग मार्ग है। उत् शब्द अप्यर्थक है। श्रेयस् मार्ग एक भिन्न है तथा प्रेयस् मार्ग भी एक भिन्न पृथक् ही है अर्थात् दोनों मार्ग परस्पर विलक्षण हैं। इन दोनों मार्गों के परस्पर विलक्षण होने में कारण बतलाते हैं-'**ते उभे**' इति। वे दोनों पूर्व प्रतिपादित श्रेयस् मार्ग तथा प्रेयस् मार्ग। '**नानार्थे**' वे दोनों नानार्थक हैं अर्थात् परस्पर विलक्षण अर्थ प्रयोजनवाले हैं जिनके एतादृश है, श्रेयस् का प्रयोजन मोक्ष है और तदन्य प्रेयस् का प्रयोजन अभ्युदय स्वर्गादिक है। इसप्रकार प्रयोजन का भेद जो कि मार्ग भेद का कारण है तादृश प्रयोजन का प्रदर्शन किया गया। '**पु-रुषं सिनीत्**' इति। ये दोनों श्रेयस् तथा प्रेयस् पुरुष को अर्थात् स्वाधिकारी पुरुषों को बांधते हैं। अर्थात् श्रेयो मार्ग मोक्षार्थी पुरुष को अपने में प्रवृत्त कराता है अपने वश में करके। एवं प्रेयस् मार्ग अभ्युद यार्थी पुरुष को अपने अधिकार में करके अपने में प्रवृत्त कराता है। '**तयोः**' इति। इन दोनों श्रेयस् तथा प्रेयस् मार्ग के मध्य में श्रेयस् मार्ग का ग्रहण करनेवाले

पुरुष को अर्थात् मोक्ष के लिये प्रयत्न करनेवाले मनुष्य को तो साधु अर्थात् शिव मोक्ष की प्राप्ति होती है। मोक्ष ही परम शिव कल्याणकारी है क्योंकि वह नित्य है। और जो अधिकारी पुरुष प्रेयस् अभ्युदय मार्ग को स्वीकार करता है अर्थात् अभ्युदय साधनीभूत ज्योतिष्टोमादिक यागादिक के लिये प्रयत्न करता है वह पुरुष अर्थ से परमपुरुषार्थ मोक्ष से अवश्यमेव भ्रष्ट हो जाता है। प्रथमतः मार्ग के स्वीकार करने में ही बुद्धि का उपयोग करना चाहिये। हे नचिकेता ? तुमने मोक्ष मार्ग का ही स्वीकार किया। इसलिये तुम प्रशंसनीय हो इस बात को यमराज ने शिष्य के प्रति अभिव्यक्त किया प्रकृत मन्त्र से ॥१॥

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ संपरीत्य विविनक्ति धीरः। श्रेयो हि धीरोऽभिप्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते ॥२॥

श्रेय मुक्ति मार्ग एवं प्रेय भोग मार्ग दोनों ही मनुष्य को प्राप्त होते हैं धीर-विचारशील पुरुष उन श्रेय-प्रेयों को खूब मनन कर दोनों को अलग करदेता है तथा वह धीर मनुष्य प्रेय भोग पदार्थ के अपेक्षा श्रेय मुक्ति को हि अति श्रेष्ठ जानकर ग्रहण करता है पर मन्द व्यक्ति योग-क्षेम शरीर के भरण पोषण एवं रक्षण हेतु प्रेय भोग मार्ग का आश्रय लेता है ॥२॥

मार्गद्वयस्यापि पुरुषसाध्यत्वात् श्रेय एव सर्वो वृणुयात् न प्रेयः तत्कथं लोकस्याधिक्येन प्रेयसि प्रवृत्तिरित्याशंकायामाह-श्रेयश्चेति । श्रेयश्च प्रेयश्च एतद् द्वयमपि मनुष्यम् अनुष्ठानोपयुक्तशरीरेन्द्रियादिमन्तं मनुजम् एतः आसमन्तात् आभिमुख्येन वा इतः प्राप्नुतः, तत्साध्ययो निःश्रेयसाभ्युदययोर्द्वयोरपि पुरुषार्थत्वात् अत्र चकारद्वयम् समुच्चयार्थत्वात् द्वयोरपि नीरक्षीरवत् संमिश्रत्वं द्योतयितुम् । धीरः हंसवद् विवेचनशीलबुद्धिः जनः तौ श्रेयः प्रेयः शब्दार्थौ संपरीत्य सम्यक् विज्ञाय विविनक्ति नीरक्षीरन्यायेन परस्परसंमिश्रौ अपि तौ पृथक् करोति । धीरः, विवेकशीलबुद्धिः प्रेयसः अभिप्रेयोऽपेक्षया अभ्यर्हितश्रेयो हि, श्रेय एव वृणीते । यद्वा प्रेयसः अभि, प्रेयोऽपेक्ष्यल्यप्लोपपञ्चमीसमाश्रयात्, श्रेयो हि श्रेय एव अभिवृणीते अभितः स्वीकरोति लाघवपरिज्ञानात् मन्दः विवेकासमर्थबुद्धिर्जनः योगक्षेमात् हेतोः 'शरीरादेरुपचयोऽत्र योगः तत्परिरक्षणञ्च क्षेमः' शरीरेन्द्रियाद्युपचयपरिरक्षणार्थं पशुपुत्रादिलक्षणं भोग्यजातं वृणीते स्वीकरोति, भोग्यजातसाधनकर्मानुष्ठाने गौरवमायासाधिक्यादिलक्षणं परिज्ञातुसमर्थत्वात् मन्दबुद्धित्वमस्येतिभावः ॥२॥

'श्रेयश्च' इत्यादि। ये दोनों ही मार्ग प्रयत्न साध्य हैं, श्रेयस् का ही सब स्वीकार करेगा प्रेयस् का नहीं करेगा। तब बाहुल्येन लोगों की प्रवृत्ति प्रेयस् में क्यों होती है इस आशंका के उत्तर में कहते हैं-**'श्रेयश्च प्रेयश्चेत्यादि'** श्रेयस् और प्रेयस् ये दोनों ही मनुष्य को अनुष्ठानोपयुक्त शरीरेन्द्रियादिमान् मनुष्य को प्राप्त करते हैं। तत्साध्य निःश्रेयस तथा अभ्युदय ये दोनों पुरुषार्थ कहलाते हैं। यहां दोनों चकार समुच्चयार्थक हैं। वे दोनों जल दुग्ध के समान संमिश्रता का द्योतन करते हैं। धीर-हंस के समान विवेचनशील बुद्धिवाला पुरुष श्रेयस् प्रेयस् शब्द प्रतिपाद्य मोक्ष भोग को जान करके नीर क्षीर न्याय से परस्पर संमिलित भी इन दोनों को पृथक् करता है। धीर अर्थात् विवेकशील बुद्धिमान् पुरुष प्रेयस् की अपेक्षया श्रेयस् अभ्यर्हित है अतः श्रेयस् का वरण करता है। अथवा प्रेयस् की अपेक्षा करके इस प्रकार ल्यंप् लोप में पञ्चमी समास का यहां आश्रयं किया गया है। सब तरह से मोक्ष मार्ग का ही स्वीकार करता है। लाघव ज्ञानरहित मन्द विवेकासमर्थ बुद्धि वाला मनुष्य योगक्षेम के कारण से। यहां शरीरादिक का जो उपचय वृद्धि वह योगपदवाच्य है। तादृश शरीर का रक्षण करना इसका नाम है क्षेम। शरीर इन्द्रियादिक

का उपचय तथा परिरक्षण के लिये पशु पुत्रादि लक्षण भोग्य जात को मन्द पुरुष स्वीकार करता है। पशु धनादिरूप भोग्य समुदाय का साधनीभूत जो कर्म अग्नि होत्रादिक में अति अधिक आयासरूप गौरव को जानने में असमर्थ होने के कारण से इस पुरुष में मन्द बुद्धि मत्व है। ऐहिक आयासाधिक्य को नहीं समझता है।२।

सत्वं प्रियान् प्रियरूपांश्च कामान् अभि ध्यायन्नचिकेतोऽस्त्राक्षीः। नैतां सृङ्कां वित्तम यीमवाप्तः यस्यां मज्जन्ति बहवो मनुष्याः ३

हे नचिकेता ? विरागवृत्ति वाला तुमने प्रियजन संपत्ति आदि को एवं अतिप्रिय रूपसे युक्त अप्सराओं को तथा लोक परलोक के भोगों को परिणाम में दुःख प्रदायक जानकर त्याग दिया इस अल्पबुद्धि से सेवित रत्न से वेष्टित स्वर्णमाला को नहीं स्वीकारे हो इस संपत्तिशाली माला के जाल में बहुत से बुद्धिमान मनुष्य डूब या बंध जाते हैं ॥३॥

हे नचिकेतः स त्वम् यः पूर्वं मया बहुशः भोग्य जातवरदानव्याजेन प्रलोभितोऽप्यप्रचलित एवाभूः ता दृशस्त्वम् प्रियान् स्वभावतः प्रियान् पुत्रादीन्। प्रियं रूपं येषामप्सरः प्रभृतीनाम् तादृशान् कामान् काम्यन्ते इति कामा अप्सरः प्रभृतयः तान्पुत्रादीनां स्वभाव एवं स्पृहणीयात्वम् अप्सरः प्रभृतीनां तु रूपलावण्यादित इति प्रसिद्धमेतत्। अभिध्यायन् नैपुण्येन निरूपयन्

निःसारत्वानित्यत्वदुःखपरिणामत्वादिकं तेषु चिन्तयन्नित्यर्थः । अत्यस्राक्षीः परित्यक्तवानसि वित्तमयीं धनमयीम् एतां मया प्रदीयमानां सृङ्कां रत्नमालाम् यद्वा कुत्सितां मन्दबुद्धिसेव्यमानां सृतिं न आवाप्त नं स्वीकृतवान् यद्वा न प्राप्तवानसि यस्यां कुत्सितायां गतौ बहवोऽसंख्याताः मनुष्याः निमज्जन्ति पतित्वा सीदन्ति अतः सारासारविवेचनचातुरीयुक्तस्त्वं प्रशंसनीयोऽसीतिभावः ॥३॥

'सत्वं प्रियान्' इत्यादि । हे नचिकेता ? वह तुम जो पहले हमसे अनेक प्रकार के वरदान के व्याज बहाने से प्रलोभित करने पर भी अपने सिद्धान्त से विचलित नहीं हुए एतादृश तुम प्रिय अर्थात् स्वभाव से प्रियपुत्र धनादिक को तथा अप्सरा प्रभृति का प्रियमनोज्ञरूप लावण्यरूप काम काम्यमान जो ही उसे कहते हैं काम अर्थात् अप्सरा प्रभृतिक को पुत्रादिक में तो स्वभावत एव स्पृहणीयता है और अप्सरा प्रभृतिक में रूप लावण्यादिक से स्पृहणीयता लोकप्रसिद्ध है । इन सब का अभिध्यान करते हुए अर्थात् इन सब में निःसारत्व अनित्यत्व दुःख परिणामत्वादिक का उसमें चिन्तन करते हुए उन सब पुत्र अप्सरा प्रभृति का तुमने परित्याग कर दिया । वित्तमयी धनयुक्त मुझसे प्रदीयमान सृङ्का रत्न

माला को अथवा कुत्सित मन्द बुद्धि से सेवित सृति को तुमने स्वीकार नहीं किया। यद्वा तुमने प्राप्त नहीं किया। जिस कुत्सित गति में बहुत असंख्यात मनुष्य गिर करके दुःखी बनता है। इसलिये सार असार विवेचन के चातुर्य से युक्त तुम प्रशंसनीय हो ॥३॥

दूरमेते विपरीते विषूची अविद्या या च विद्येति ज्ञाता। विद्याभीप्सिनं नचिकेतसं मन्ये न त्वा कामा बहवोऽलोलुपन्त ॥४॥

जो ऐहिक भोगरूपा अविद्या नामसे प्रख्यात है एवं जो परमार्थ ज्ञानरूपा विद्या नामसे प्रसिद्ध है ये दोनों अतिदूर तथा परस्पर में भिन्न स्वभाव तथा भिन्न भिन्न फलों को प्रदायिका हैं। मैं तुम नचिकेता को विद्या का इच्छुक मानता हूँ इसलिये कि तुझे बहुत से भोग के साधन लुभा नहीं सके ॥४॥

या कर्मकाण्डे प्रसिद्धा काम्यकर्मस्वरूपा अविद्येति ज्ञाता समवगता पण्डितैरिति शेषः। या च वेदान्तेषु प्रसिद्धा तत्त्वज्ञानस्वरूपा विद्येति ज्ञाता पण्डितैरिति शेषः। प्रेयः साधनभूता अविद्या श्रेयः साधनभूता तु विद्येति विवेकः। एते विद्याऽविद्ये दूरम् अत्यन्तं विपरीते तेजस्तमसीव परस्परविरुद्धस्वरूपे एकस्याः तत्त्वज्ञानरूपत्वात् अपरस्याश्च काम्यकर्मरूपत्वात् इतिभावः। विषूची विपरीतं फलं सूचयतः

इति विषूच्चौ । छान्दसः सवर्णदीर्घः । विभिन्नफलिके इत्यर्थः । विद्यायाः मोक्षफलकत्वात् अविद्यायाश्च संसारफलकत्वादितिभावः । तत्र विद्याविद्ययोर्मध्ये विद्याभीत्सिनं विद्यार्थिनं नचिकेतसं त्वामहं मन्ये श्रेयः समुत्सुक्तायास्त्वयि परिज्ञानात् इतिभावः । यस्मात् हेतोः बहवोऽपि मया दीयमानाः कामाः अप्सरः प्रभृतयः त्वा त्वाम् न अलोलुपन्त श्रेयोमार्गात् विच्छेदं कर्तुम् समर्थाः नाभूवन् । अप्सरः प्रभृतिभोगाय त्वं बहुशः प्रचालितोऽपि प्रचलितो नाभवः इति श्रेयः साधनविद्याकामस्त्वं स्तोतुमर्हसीति मृत्योरभिप्रायः । अलोलुपन्तेत्यत्र छान्दसो यङ् लुक् ॥४॥

'दूरमेते' इत्यादि । जो कर्मकाण्ड में प्रसिद्ध काम्य कर्मस्वरूप अविद्या है वह पण्डितों से समवगत-ज्ञात है। तथा जो वेदान्त में प्रसिद्ध तत्वज्ञानरूपा विद्या है वह भी पण्डितों से ज्ञात है । उस विद्या अविद्या में स्वर्गाद्यभ्युदय की साधनारूपा अविद्या है और मोक्ष का साधनभूत वेदान्त प्रसिद्ध विद्या है इस प्रकार इन दोनों में परस्पर भेद है । ये दोनों विद्या तथा अविद्या दूर हैं अत्यन्त विपरीत हैं । प्रकाश तथा अन्धकार के समान परस्पर विरुद्ध स्वभावक है । अर्थात् एक विद्या तो तत्व ज्ञानरूप है तथा अविद्या काम्य कर्मरूप है । 'विषूची'

विपरीत परस्पर विरुद्ध फल का सूचक हैं। विषूची में जो सवर्णदीर्घ है वह छान्दस है। दोनों का फल भिन्न भिन्न है अर्थात् विद्या का फल मोक्ष है जो कि नित्य निरतिशयानन्द स्वरूप है और अविद्या का फल अनेक दुःखमोहादि युक्त संसार है। उस विद्या तथा अविद्या के मध्य में हे नचिकेता ? विद्या प्रयोजन वाला तुमको मैं समझता हूँ। क्योंकि तुमको श्रेयस् मोक्ष के लिये अति उत्कण्ठा है। जिस लिये कि अनेक प्रकारक हमसे प्रदत्त अप्सरा प्रभृतिक लोभ कामना विषयक पदार्थ तुमको लुब्ध नहीं कर सका अर्थात् कमनीय ये सब पदार्थ तुमको मोक्ष प्रच्युत करने में समर्थ नहीं हुए। अप्सरा प्रभृति के भोग के लिये अनेक प्रकार से प्रलोभित करने पर भी तुम विचलित नहीं हुए। अतः मोक्षसाधन विद्या कामना वाला तुम प्रशंसा के पात्र हो ऐसा मृत्यु का अभिप्राय है। अलोलुपन् यहां जो यङ् प्रत्यय का लोप हो गया है वह छान्दस होंने से लोप हुआ ऐसा समझना चाहिये ॥४॥

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितं मन्यमानाः। दन्द्रभ्यमाणाः परियन्ति मूढाः अन्धेनैव नीयमानाः यथान्धाः ॥५॥

सकाम कर्मरूप अविद्या के वीच में स्थित स्वयं धीर एवं पण्डित मानने वाले विवेक रहित जन अन्धे जन के द्वारा ले जाये जाते अन्ध जन के समान जन्म मृत्यु वाले अनेक योनियों में टकराते हुये संसार में भ्रमण किया करते हैं ॥५॥

इदानीमविद्यां काम्यकर्मरूपं ये सेवन्ते तेषामधो गतिं दर्शयति मृत्युः अविद्यायामिति अविद्यायाम् काम्यकर्मादिरूपायामन्तरे अविद्यामध्ये अविरतितम संतमसे इव वर्तमानाः तत्र निमज्जन्तः पुत्रभार्यापशुहिरण्यादितृष्णापरिगताः इत्यर्थः । स्वयं धीराः स्वयं प्रज्ञाशालिनः अन्यदृष्ट्या ये बुद्धिरहिता एव स्वदृष्ट्या आत्मानं बुद्धिमन्तं ये मन्यन्ते ते पण्डितंमन्यमानाः आत्मनि शास्त्रनिपुणताभिमानवन्तः । एवभूताः मूढाः विवेकरहिता जनाः अन्धेन चक्षुर्विहीनेन जनेन नीयमानाः विषमे कण्टकादिसमाकीर्णे वा वर्त्मनि प्राप्यमाणाः अन्धाः दृष्टिरहिता जना यथा परियन्ति परितः अनर्थान् कण्टकवेधशरीरपादादिभङ्गरूपान् यन्ति प्राप्नुवन्ति तथा दन्द्रभ्यमाणाः । गत्यर्थो यडन्तो द्रम् धातुः । कुटिलं गच्छन्तः कुटिलगतिं प्रतिपद्यमानाः परियन्ति परितः स्वर्गनरकपशुस्थावरादियोनिषु नाना प्रकाराणि दुःखानि प्राप्नुवन्ति । दन्द्रव्यमाणा इत्यपि क्वचित्पाठः । तदा विषयवासनावह्निविद्रूयमाणमनस

इत्यर्थः ॥५॥

जो व्यक्ति काम्य कर्मरूप अविद्या सेवन करता है उसे अधोगति होती है इस बात को श्रुति बतलाती है- **'अविद्यायाम्'** इत्यादि से । काम्य कर्मस्वरूप अविद्या के मध्य में अविरति नामक अन्धकार में वर्तमान उसमें डूबता हुआ अर्थात् पुत्र भार्या पशु हिरण्यादि विषयक तृष्णा से संयुक्त । स्वयमेव अपने को पण्डित मानने वाला अर्थात् अन्य की दृष्टि से यद्यपि सर्वथा बुद्धिरहित है तथापि स्वदृष्टि से अपने को जो बुद्धिमान समझता है उसे स्वयं धीर कहते हैं । तथा **'पण्डितं मन्यमानाः'** शास्त्र विषय में मतिमान अपने को जो जानता है उसे पण्डितं मन्यमान कहते हैं । अर्थात् अपने में शास्त्रीय निपुणता का अभिमानवान् । एतादृश मूढ विवेकरहित मनुष्य अन्ध चाक्षुष दर्शन शक्ति विकल व्यक्ति से नीयमान अथवा विषम कण्टकादि समाकीर्ण मार्ग में प्राप्त अन्ध दृष्टिरहित व्यक्ति जिसप्रकार से पराभव को प्राप्त करता है अर्थात् कण्टक वेध शरीरपादादि भंगरूप अनर्थ को प्राप्त करता है । **'दन्द्रभ्यमाणाः'** इति । गत्यर्थक यङ् प्रत्ययान्त द्रम् धातु का दन्द्रभ्यमाण यह प्रयोग है, उसका अर्थ होता है टेढे मार्ग से चलनेवाला कुटिल बुद्धि को प्राप्त करनेवाला पुरुष सर्वथा स्वर्ग

नरक स्थावरादि अधो योनि में नाना प्रकारक दुःख को प्राप्त करता है। 'दन्द्रव्यमाणाः' ऐसा भी कहीं पाठ है। उसका अर्थ यह होता है कि विषय विषयक वासनारूप वह्नि से विदूयंमान दुःखीचित्त जिसका, हो एतादृश होता है ॥५॥

न सांपरायः प्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम् । अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे ॥६॥

वित्त-धन के मोह से मूढ-विवेक रहित सर्वदा प्रमाद करनेवाले बालक-विवेक हीन को परलोक सूझता नहीं है। वह मेरे सामने दीख रहा लोक ही सत्य है अन्य परलोक स्वर्ग या नरक प्रभृति नहीं है ऐसा मानने वाला मनुष्य पुनः पुनः मेरे वश में आ जाता है ॥६॥

संपरेयते सम्यक् अस्मात् लोकात्परावृत्य गम्यते इति संपरायः परलोकः संपरायः एव सांपरायः, यद्वा सम्परायः परलोकः प्रयोजनमस्येति साम्परायः पर लोकसाधनभूतं शास्त्रप्रतिपाद्यं वर्त्म, स साम्परायः बालम् बालमिव विवेकस्पर्शहीनम् । अतएव प्रमाद्यन्तम् शरीरोपचयसाधनेषु पश्वन्नप्रभृतिषु समासक्ततयाऽसमाहितचित्तम् । वित्तमोहेन मूढम् वित्तम् रत्न हिरण्यादितन्निमित्तेन मोहेन अविवेकेन मूढम् मुग्धम् विषयवासनाकवलितान्तःकरणम् जनं प्रति न भाति न

प्रकाशते । अस्ति कश्चित् परलोकोऽपि पदार्थः, तत्साधनमार्गो वा शास्त्रबोधित इति भानमविवेकिनो धनाशापरीतस्य नैव भवतीत्यर्थः । तस्मात् अयं दृश्यमानः लोक एवास्ति, दृष्टस्यैव प्रामाण्याभिमानात् । परः परलोकः नास्ति तस्यादृश्यमानत्वात् इति मानी अभिमानवान् । स हि केन परलोको दृष्टः ततो नास्त्येव स इति मन्यते, एवंभूतोजनः पुनः पुनः जन्ममरणपरम्परया वारंवारम् मे मम दण्डधरस्य शासितुर्यमस्य वशं आधीन्यम् आपद्यते मया क्रियमाणायाः मम यातनाया विषयो पौनः पुन्येन भवतीत्यर्थः । क्वचित्तु 'इति मानी' त्यत्र 'उत मानी' ति पाठः, तदा उत शब्दस्य अपि समानार्थत्वात् अयं लोको नास्ति, परोऽपि लोको नास्ति इत्येवमन्वयः कार्यः । तत्पक्षे बाल इव विवेकहीनः इमं लोकं न मन्यते शिष्टैरपरिगृहीतत्वात् परलोकमपि न मन्यते विषयवासनापरीतत्वात् तस्मात् ईदृशदुष्टात्मनः पौनः पुन्येन मम यातनाविषयता भवत्येवेतिभावः ॥६॥

'न सांपरायः' इत्यादि । संपरेयते समीचीन रूपेण इस लोक से परावृत्त हो करके जाया जाय जिसमें उसे कहते हैं संपराय अर्थात् परलोक और संपराय का नाम होता है सांपराय । यद्वा संपराय परलोक है प्रयोजन

कार्य जिसका उसे कहते हैं सांपराय । परलोक का साधनभूत शास्त्र प्रतिपादित मार्ग विशेष । एतादृश जो सांपराय वह बालक को बाल के समान विवेक के स्पर्श से भी रहित व्यक्ति को । अतएव प्रमाद युक्त अर्थात् शरीर के उपचय का कारण पशु अन्न प्रभृति में अत्यासक्त होने के कारण से असमाहित है मन जिसका वह । वित्त मोह से मूढ, उसमें वित्त कहते हैं रत्न हिरण्य प्रभृतिक तन्निमित्तक मोह से अर्थात् अविवेक से मूढ मुग्ध अर्थात् विषय वासना से कवलित संयुक्त है अन्तःकरण जिसका एतादृश व्यक्ति को परलोक प्रकाशित नहीं होता है । अर्थात् परलोक नामक भी कोई पदार्थ है तथा एतादृश परलोक का शास्त्र बोधित साधनीभूत मार्ग है एतादृश ज्ञान धनाद्याशा परिवृत व्यक्ति को नहीं होता है । इसलिये परिदृश्यमान लोक ही है । क्योंकि जितना देखने में आता है उतना ही प्रामाणिक है **'एतावानेव हि लोकोयं यावनिन्द्रियगोचरः'** इतना ही लोक है जितना इन्द्रिय के द्वारा देखने में आता है । इससे अतिरिक्त में कोई प्रमाण नहीं है-**'एतादृश अभिमानवान्'** परलोक नहीं है क्योंकि उसकी सत्ता में कोई प्रबल प्रमाण नहीं है एतादृश अभिमानवान् । किसने परलोक को देखा है इसलिये परलोक नहीं है ऐसा वह मानता है । एतादृश

परलोक में आस्थारहित जो व्यक्ति है वह पुनः पुनः जन्ममरण की परम्परा से वारंवार शासक दण्डधारी मुझ यमराज की अधीनता को प्राप्त करता है। अर्थात् हमसे क्रियमाण जो यातना है उससे युक्त होता है।

किसी किसी पुस्तक में **इतिमानी** की जगह में **'उतमानी'** ऐसा पाठ है वहां उत शब्द अपि शब्द के समानार्थक होने से-**'अयं लोकोनास्ति परोपि लोको नास्ति'** ऐसा अन्वय करना चाहिये तव यह लोक नहीं है और परलोक भी नहीं है इसप्रकार अर्थ करना चाहिये। उस पक्ष में बालक के समान विवेकहीन व्यक्ति इस लोक को नहीं मानता है जो कि शिष्ट व्यक्ति से परि गृहीत नहीं होने से तथा परलोक को भी नहीं मानता है विषय वासना से युक्त होने के कारण। इस कारण से एतादृश दुष्टात्मा जो व्यक्ति है उसे बारंबार मेरी यातना अवश्य ही होती है ऐसा इसका अभिप्राय है ॥६॥

श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः श्रृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः। आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा आश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः ॥७॥

इस मुक्तात्मा या परमात्म तत्त्व के विषय में बहुत जनों से सुनने

को भी नहीं मिलता है उस तत्त्व को सुनकर भी बहुत जन उसे नहीं जान पाते हैं। इस मुक्तात्म या परमात्म तत्त्व का कुशल वक्ता भी बहुत दुर्लभ है तो इस तत्त्व का यथार्थ रूपसे ग्रहण करने वाला भी दुर्लभ ही है एवं कुशल उपदेशक उपदेश प्राप्त तत्त्वज्ञानी साधक भी दुर्लभ ही है ॥७॥

अनेकजन्मसमुपार्जितसुकृतपरम्परया त्वादृशः श्रेयोर्थी विरल एव भवतीति नचिकेतसं प्रशंसितुमाह श्रवणायापि शास्त्रतात्पर्यविद्यया निश्चेतुमपि यः परमात्मा बहुभिः श्रोतृभिः न लभ्यः प्राप्योऽस्ति, बहवोजनाः श्रुतिजन्यपरमात्मतत्वविनिश्चयाय न प्रवर्तन्ते किन्तु प्राक्तनपुण्यपरिपाकवन्तोऽल्पीयांस एवात्र प्रवर्तन्ते इतिभावः, श्रृण्वन्तोऽपि ये परमात्मतत्वं प्रवर्तन्ते विनिश्चेतुं तेष्वपि बहवः जनाः यं परमात्मानं न विद्युः न जानन्ति किन्तु श्रवणपरेष्वपि कश्चिदेव ज्ञातुं प्रभवति । अस्य एवंभूतस्यासुलभज्ञानस्य परमात्मनः कुशलः निपुमः वक्ता उपदेष्टा आश्चर्यः अद्भुत एव । शिष्यप्रतिपत्तिकारिनैपुण्येन समुपदेष्टाऽपि परमात्मतत्वस्य महान् दुर्लभ इतिभावः । एवम् कुशलानुशिष्टः कुशलेन निपुणेनाचार्येण अनुशिष्टः समुपदिष्टः परमात्मतत्वस्य ज्ञाता अपि आश्चर्य एव । विरल एव निपुणतमगुरूपदिष्टोऽपि याथार्थ्येन परमात्मतत्त्वज्ञाताभवतीत्यर्थः । अस्यलब्धा अपि आश्चर्यः

निपुणतमपरमात्मतत्त्वज्ञाताभवतीत्यर्थः । अस्यलब्धा अपि आश्चर्यः निपुणतमगुरूपदेशसामर्थ्यावगतपरमात्म याथार्थ्येष्वपि विरल एव उपायानुष्ठानतोऽस्य प्राप्ति कर्तेति सर्वतोऽस्य दौर्लभ्यादाश्चर्यंकरत्वमितिभावः ।७।

अनेक जन्म की परम्परा से समुपार्जित जो सुकृत है उस पुण्य की परम्परा के बल से तुम्हारे सदृश मोक्षाभिलाषी कोई कोई ही व्यक्ति होता है, इसप्रकार नचिकेता की प्रशंसा करते हुए कहते हैं-'**श्रवणायापीत्यादि**' से शास्त्र का तात्पर्य विद्या से निश्चय करने के लिये योग्य भी परमात्मा सर्वेश्वर अनेक श्रोताओं से जो परमात्मा लब्ध प्राप्य नहीं होते हैं । अनेक व्यक्ति श्रुतिजनित परमात्म तत्व के निश्चय करने के लिये तो प्रवृत्त ही नहीं होते हैं किन्तु पूर्व जन्मोपाजित पुण्य परिपाक के बल से बहुत कम व्यक्ति हैं जो इस परमात्म तत्व के विनिश्चय करने के लिये प्रवृत्त होते हैं। उन सब में भी अनेक व्यक्ति जिस परमात्मा को नहीं जान सकते हैं किन्तु श्रवण करने में सोत्कण्ठित व्यक्तियों में भी विरल कोई ही व्यक्ति जानने में समर्थ होता है। एतादृश दुर्ज्ञात परमात्मा श्रीराम का अतिनिपुण वक्ता उपदेश देनेवाला व्यक्ति भी आश्चर्य अद्भुत ही है। शिष्य को ज्ञान कराने में निपुण परमात्मा तत्व का

उपदेशक व्यक्ति महान् दुर्लभ है। 'कुशलानुशिष्टः' इत्यादि। कुशल अर्थात् निपुण आचार्य से समुपदिश्य मान परमात्म तत्व के ज्ञाता भी आश्चर्य ही है। निपुणतया गुरु से उपदिष्ट भी व्यक्ति यथार्थ रूपसे परमात्म तत्व का ज्ञाता हो वह भी अति विरल है। इस परमात्मा को लाभ करनेवाला भी आश्चर्य ही है अर्थात् निपुणतर गुरु के उपदेश की सामर्थ्य से अवगत है परमात्मा श्रीरामजी का याथार्थ्य ज्ञान जिनको एतादृश व्यक्तियों में से भी विरल ही कोई व्यक्ति है जो कि उपाय के अनुष्ठान से इस परमात्मा को प्राप्त करनेवाला होता है। इसलिये सर्वथा दुर्लभ होने से आश्चर्यकर है यह परब्रह्म तत्त्व ऐसा इसका भाव है ॥७॥

न नरेणावरेण प्रोक्त एष सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः। अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्त्यणीयान् ह्यप्रतर्क्यमणुप्रमाणात् ॥८॥

यह मुक्तात्म या परब्रह्म तत्त्व नास्तिकों तथा आस्तिकों द्वारा अनेक प्रकार से चिन्तित किया जाता रहा है अल्प वेदान्त के अभ्यासी मनुष्य के द्वारा उपदिष्ट होने पर यह तत्त्व सुबोध का विषय नहीं होता है परम्परागत तत्त्वज्ञ आचार्य से उपदिष्ट होने पर श्रोता का संसार में पुनः आवागमन नहीं होता है क्योंकि यह विषय तर्क से निश्चित नहीं होता कारण कि अणुप्रमाण वाले विषय से भी यह आत्म

तत्त्व ज्ञान परम अणु-सूक्ष्म है ॥८॥

पूर्वमन्त्रे परमात्मतत्वस्य वक्ता ज्ञाता चाश्चर्य इत्युक्तम् । तत्र हेतुस्तु नोपन्यस्तः तमनेन मन्त्रेण समुपन्यस्यति अवरेण हीनेन प्राकृतबुद्धिना देहेन्द्रियादिष्वात्माभिमानवता नरेण प्रोक्तः प्रकर्षेण उक्तः समुपदिष्टोऽपि एष परमात्मा न सुविज्ञेयः नहि सम्यक् विज्ञातुं शक्यो यतो हेतोः वादिभिः तैस्तैस्तान्त्रिकैः बहुधा चिन्त्यमानः अस्तिनास्तीत्येवं रूपेण, कर्ता अकर्ता इत्येवं रूपेण नित्योऽनित्य इत्येवंरूपेण बहुप्रकारेण विचार्यमाणोऽस्ति, प्रकारबाहुल्यात् । अकृतात्मसाक्षात्कारवता नरेण प्राप्तोपदेशस्यापि तादृशो वक्ता आश्चर्य एव । एवं सत्यपि कृतात्मसाक्षात्कारवतोपदेशे विषयवासनावशीकृतमनसा अवरेण नरेण नैव सम्यग् ज्ञातुमर्ह इति ज्ञाताऽपि गतवासनः कश्चिदेवातो ज्ञाताऽप्याश्चर्य इतिभावः । अनन्यप्रोक्ते अन्येन स्वापेक्षया भिन्ने ब्रह्मसाक्षात्कारवता गुरुणा प्रोक्तः अन्यप्रोक्तः तद्भिन्ने गुरूपदेशमन्तरेण स्वबुद्धिव्यापारमात्रेण विचिन्तितेऽत्र परमात्मस्वरूपे गतिः अवगमः सम्यग् ज्ञानमित्येतत् नास्ति न भवति कस्यापि । यद्वा अनन्येन परमात्मनि स्वात्मत्वानुसंधानवत्तया तदैकान्तिकेन तत्साक्षात्कारवता प्रोक्ते अत्र परमात्मस्वरूपे